

श्री हरि:

साई साहिब की जै

महाराज श्री, श्री उड़ियाबाबा जी व हमारे श्री साई साहब का परस्पर अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था । वे एक दूसरे को जानते पहचानते थे । महाराज श्री, श्री साई साहब को बड़े मानते थे, परन्तु उनके अनुकूल ही वर्ताव करते थे । कभी भी बाहर से साई साहब का आदर-सत्कार नहीं किया । क्योंकि साई साहब अपने को छिपाने में ही सन्तुष्ट होते थे । इधर महाराज श्री का साई साहब अत्यन्त आदर-सत्कार सेवा करते, अपने घर ले आते, हँसते-हँसाते झूलों में झुलाते, खिलाते पिलाते थे । महाराज श्री भी साई साहब के आश्रम में आकर बालकों की भाँति सरल-स्वच्छ भाव से बोलते बतिआते एवं परम आनन्द का अनुभव करते थे ।

एक दिन महाराज श्री अपने आश्रम की कुटिया में विराजमान थे । अपने सत्संगी सब बैठे थे । मैया चरण चाप रहीं थीं । उस समय महाराज श्री के सेवकों में से किसी ने वर्तमान सन्तों की चर्चा की और पूछा-“आप इन सब में किनको बड़े मानते हैं ?” महाराज श्री ने कहा कि-“ये सब हमें बच्चे लगते हैं, किन्तु साई साहब हमें बड़े लगते हैं ।” साई साहब का “साई साहब” नाम भी महाराज श्री ने ही रखा ।

पहले सब सेवक बाबल साईं ही कहा करते थे । तब से सब “साईं साहब”, कहने लगे ।

जब साईं साहब सिन्ध में थे तब की बात है । स्वामी टहल्यारामजी ने प्रार्थना की कि हमें प्रेम-रस का आस्वादन कराओ । साईं साहब ने कहा-तुम निष्कपट भाव से अपने मन की बातें सरलता पूर्वक सुनाकर तीन वर्ष मीरपुर के दरबार में रहो तो ईश्वर कृपा से प्रेम-रस का आस्वादन यथाशक्ति करवा देंगे । स्वामी टहल्याराम जी ने कहा तीन वर्ष नहीं बारह महीने लगातार रहूँगा ।

भाई साहब, तुम तीन वर्ष नहीं रहना चाहते । हम तो कहते हैं कि कोई ऐसा महापुरुष मिलें तो हम जीवन भर उनकी सेवा शुश्रूषा कर सकते हैं ।

स्वामी टहल्याराम बोले- किसी महापुरुष के माथे पै स्वर्ण का सींग हो तो वे आपको अपनी शरण में रख सकते हैं । ऐसे-वैसे की तो हिम्मत नहीं है ।

जिन दिनों श्री वृन्दावन में महाराज श्री से साईं साहब का सम्पर्क हुआ उन्हीं दिनों एक दिन वही पुरानी चर्चा चली । साईं साहब ने कहा- इन महापुरुष के माथे पर सोने का सींग है । साईं साहब कहा करते थे के श्री उड़ियाबाबा जी के दर्शन सत्संग से हमें अपने स्वामी श्री आत्माराम साहब का दर्शन होता है । और स्वामी श्री अखण्डानन्द जी के मिलने में सन्त सद्गुरु श्री अविनाश चन्द्र जी का सा रसास्वादन होता है ।

श्री उड़िया बाबा जी महाराज भी अपने आश्रम में साईं साहब को आया देखकर बड़े ही प्रसन्न व प्रफुल्लित होते थे । कभी-कभी तो आलिंगन करते थे और झट अपने सब कार्यों को छोड़कर उनके साथ अपनी कुटिया या कथा मण्डप की चौकी पर बैठ जाते थे । साईं साहब उनके श्री चरण चापते थे । कथा सत्संग होता था । दोनों ही परस्पर एक दूसरे के दर्शन व मिलन से इतने हर्षित होते कि देखकर देखने वाले भी भाव-विमुग्ध हो जाते थे । बाहर से तो महाराज श्री कोई आदर सत्कार नहीं करते थे परन्तु उनकी प्रेममयी दृष्टि से मालूम पड़ता था के अगाध आनन्द का अनुभव कर रहे हैं । उन दोनों के इस प्रेम पूर्ण मिलने का सुख वर्णनातीत है ।

महाराज श्री का स्नेह जितना साईं साहब से था उतना ही वात्सल्य प्रेम था मैया में । वे मैया को अपनी माँ से भी अधिक मानते थे । उनके वात्सल्य को देख-देखकर आनन्दित होते थे । मैया भी जैसे अपने इकलौते बच्चे की सार-सँभार माँ करती है उससे भी कोटि गुना अधिक महाराज श्री के सुख साधन का ध्यान रखती थीं ।

साईं साहब के निकुंज प्रवेश के पश्चात् मैया अत्यन्त विरह-कातर हो गयी । खाना-पीना सब छोड़ दिया । दिन रात साईं के चिन्तन में ही डूबी रहती थीं । मैया की विरह-व्याकुलता को शान्त करने के लिये महाराज श्री दूसरे तीसरे दिन साईं के घर आकर सत्संग करते थे । साईं के प्रेम की बातें,

उनके गुणों का बखान व साईं साहब के वचनों का भाव सम-
झाते और मैया को आश्वासन देते थे । दो-दो ढाई-ढाई घण्टे
सत्संग होता था । इससे मैया का मन कुछ शान्ति का अनुभव
करता था । महाराज श्री अपने आश्रम से अपने सेवकों के
हाथों भोजन भेजते थे । मैया महाराज श्री की आज्ञा मानकर
एक या आधी रोटी खा लेती थीं । इस तरह मैया को प्रसन्न
करने के लिये महाराज श्री महीना डेढ़ लगातार आते रहे ।

एक दिन मैया ने प्रार्थना की कि साईं साहब ने एक
ग्रन्थ लिखा है जिसको गुप्त रखा है । खोलने की बिल्कुल मना
कर दी है । तो फिर हमें क्या करना चाहिये ? महाराज श्री ने
कहा कि भक्त जन हमेशा अपने को छिपाते हैं । साईं साहब तो
अत्यन्त गुप्त भाव से रहना चाहते थे । अब हम उनको गुप्त रहने
नहीं देंगे । हम उस ग्रन्थ को खोलेंगे । यों कहकर अपने आश्रम
को गये और स्वामी अखण्डानन्द जी को आज्ञा दी कि तुम
जाकर उस ग्रन्थ को खोलो । वैसे तो श्री स्वामी जी नित्य ही
शाम के समय आते ही थे और साईं साहब के पत्रों तथा ग्रन्थों
पर छिपे-लिखे हुए वचनों को सुनते, उनका भाव सुनाते, मैया
को समझाते बुझाते थे । उनकी व्याकुलता कम कर देते थे ।
आज उन्होंने साईं साहब के उस गुप्त ग्रन्थ 'श्री कोकिल-कलरव'
को अपने श्री कर कमलों से खोला । उनके खुलते ही सत्संगीओं
में हर्षितरेक की धूम मच गयी । मैया का चित भी अत्यन्त
प्रसन्न हो गया । किन्तु वह ग्रन्थ संस्कृत में था । महाराज श्री

को मालूम हुआ तो उन्होंने स्वामी जी को आज्ञा दी कि तुम इसका अनुवाद करो । जैसे भी मैया का मन प्रसन्न हो, वह अपने जीवन को धारण कर सके, वह कार्य करो । श्री स्वामी जी ने उसका अनुवाद किया ।

उस ग्रन्थ में श्री अवध युगल सरकार का परस्पर अनुपम अगाध स्नेह का वर्णन व साईं साहब का युगल सरकार के प्रति असीम अनुराग, ममता व वात्सल्य और फिर युगल का भी साईं में वात्सल्य स्नेह कितना गहरा है, ये सब उस ग्रन्थ में था । शाम को महाराज जी आते और ६-७ बजे तक सत्संग चलता रहता था । रात के ११-१२ बजे तक मैया इस कथा सुधा में निमग्न रहती थी । तब से धीरे धीरे मैया का विरह ताप प्रेम में परिवर्तित होने लगा । वे अब आश्रम पर भी सत्संग में आने जाने लगी । महाराज श्री मैया को प्रसन्न करने के लिये झट कथा-मण्डप में आकर बैठ जाते थे । मैया श्रीचरणों को सहलाती थी । एक दिन वैसे ही चौकी पर महाराज श्री विराजमान थे । एक माई आकर श्रीचरणों को चापने लगी तो झट महाराज श्री ने कहा- हट ! ये चरण मैया के लिये हैं । एक बार मैया मिठाई लेकर आयी । महाराज श्री ने उसको ले लिया । उसी समय झाँकी के ठाकुर आये । महाराज श्री ने अपने तख्त पर ही उनको बिठाया । उनको कुछ खिलाने की इच्छा से इधर उधर देखने लगे । मैया सब समझ गयी । बोली- ये मिठाई है न ? खिला दो । महाराज श्री बोले - नहीं । यह तो

मेरी है । इन्हें नहीं दूंगा । फिर फल मंगवाकर ठाकुर जी को खिलाया ।

महाराज श्री की प्रेरणा से ही श्री स्वामी जी महाराज ने “श्री भक्त कोकिल” लिखना आरम्भ किया । अभिप्राय यह था कि जिस से मैया का हृदय सन्तुष्ट हो । सवेरे के समय ही स्वामी जी लिखवाते थे और मैया भी उसी समय आती थी । महाराज श्री मैया को अपने यहां रोक लेते थे । कहते थे - शान्तनु, साई साहब का चरित लिख रहा है । तुम जाओगी तो लिखना बन्द कर देगा । तुम यहीं बैठी रहो, उन्हें लिखने दो ।

इस तरह से महाराज श्री की अनन्त कृपा व वात्सल्य साई साहब और मैया पर सर्वदा बना रहा ।

